३२६वाँ ऋत्विक सम्मेलन में
पूजनीय बिंकीदा का वक्तव्य(सम्पादित)
३१ दिसम्बर, २०२१

जयगुरु! बहुत ही सीमित समय में हम इस ऋत्विक सम्मेलन का आयोजन कर पाए हैं। हाथ में समय ही नहीं बचा था। हमलोगों के जीवन में यह जो एक विराट पट-परिवर्त्तन की लीला संघटित हुई, उसे संभालते-संभालते ही इस ऋत्विक सम्मेलन का समय आ पहुँचा। और अभी भी तो संक्रमण के मामले हैं हीं। इसीलिए पिछले कई बार की तरह इस बार भी वर्चुअल उपाय से ही ऋत्विक सम्मेलन अनुष्ठित हो रहा है। परमपूज्यपाद मेज-दा, मेरे पूजनीय मझले चाचाजी, सत्संग के सभापति ने आशीर्वादीय अपनी कुछ बातें हमलोगों को कहा है। सत्संग के श्रद्धेय सेक्रेटरी महोदय कार्तिकदा भी कुछ बातों के साथ-साथ वार्षिक रिपोर्ट पाठ किये हैं। इनके अलावा मैं भी बोल रहा हूँ। इसबार का ऋत्विक सम्मेलन इन तीन लोगों के वक्तव्य को लेकर ही है।

विशेष कुछ आवश्यक बातें हैं जिनकी जानकारी आपलोगों को रखने का प्रयोजन है–विशेषतः प्रत्येक कर्मी को। ठाकुरजी के पंजाधारी कर्मी-सेवकगण उनके ही वार्तावाही हैं, आदर्शवाही हैं, जिनका कार्य है उनके आदर्श को हर जीवन तक पहुँचाना। इसीलिये कुछ बातों से उनको अवगत रहने की आवश्यकता है। उन बातों को जानकर तदनुसार स्वयं आचरणशील होना एवं प्रत्येक को उसी पथ पर चलने के लिए अभ्यस्त बनाना–यही है कर्मियों का कार्य। हमारे प्रत्येक के जीवन के समक्ष यह जो पट-परिवर्त्तन हुआ, इसके ही परिप्रेक्ष में कुछ बातें आप सबको बताना आवश्यक है । ध्यान से सुनें, जानें, समझें–उसी अनुसार उनको अपने जीवन में वास्तवायित करें, सभी के जीवन में भी कराएँ, और सत्संग के जो सारे प्रतिष्ठान विभिन्न स्थानों पर हैं–सत्संग केन्द्र-मन्दिर-विहार आदि, उन प्रतिष्ठानों में भी इन बातों को वास्तवायित कराएँ।

हमने अपने जीवन में ठाकुर को ग्रहण कर, उनका अनुसरण कर चलने का संकल्प लिया है। संकल्प क्यों लिया है? अपने बचने-बढ़ने के प्रयोजन से। हमलोग बचे रहना चाहते हैं, बढ़ते जाना चाहते हैं–इसीलिए हमने यह संकल्प लिया है; एवं वे जिस तरह से हमसभी को चलने के लिये अभ्यस्त किये हैं, उसी चलन में हमलोग अभ्यस्त होने का संकल्प लिये हैं। अपने-अपने अनुसार चलने की चेष्टा भी करते हैं, जिसमें जितनी क्षमता है उसे लेकर ही चेष्टा करते हैं।

विगत १६ दिसम्बर को परमाराध्य पितृदेव अपनी पार्थिव लीला को संवरण कर ब्रह्मलीन हुए। वे अपने समग्र जीवन द्वारा, समग्र सत्ता से दयाल ठाकुर की प्रतिष्ठा, दयाल ठाकुर को प्रकाश कर गये हैं–अपने पितृदेव की तरह। मानों उनका जीवन ही था दयाल ठाकुर के भाव का दिव्य प्रकाश। समग्र जीवन भर वे उसी प्रकाश को विच्छुरित कर प्रकृति के अमोघ नियमानुसार परिणत वयस में लीला संवरण करते हुए ब्रह्मलीन हुए–निजधाम में प्रत्यावर्त्तन कर गये। किन्तु पुरुषोत्तम तो चिर-अतन्द्र हैं। उनका रथ नहीं थमेगा, उनके चलने की गति नहीं थमेगी। दुर्वार गति से वह रथ चलती ही रहेगी। कोई भी उसे व्याहत नहीं कर सकता, किसी कारण से भी वह व्याहत नहीं होता। वे जिस कारण इस धराधाम पर आविर्भूत हुए हैं, वह कारण सिद्ध नहीं होने तक अविराम वह चलन चलता

ही रहेगा। उनकी दिव्य-लीला नाना-रूप में, नाना-रस में, नाना-शब्द में, नाना-गंध में, नाना-वर्ण में हमलोगों के जीवन को उद्भासित करती रहेगी, पुष्ट करती रहेगी। हमलोगों को कैसे चलना है, किस तरह से सोचना है, कैसे बोलना है, किसप्रकार प्रत्येक पदक्षेप रखना है–इसकी व्यवस्था हमलोगों के प्रियपरम, परमदयाल, परमप्रेमी–परमप्रेममय पुरुषोत्तम श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र स्वयं कर दिये हैं। इस 'सत्संग' में जो कुछ भी चलता है, होता है, जो सारे नियम, जो सारी विधियाँ, सबकुछ उनका प्रदत्त है, उनका ही आशीर्वाद है, उनका ही अनुशासन है। उस अनुशासन, नियम, विधि को मानकर ही सबकुछ स्वाभाविक गति में संघटित होकर चलता, कुछ भी ठहरता नहीं है। सारी व्यवस्था वे ही करते हैं।

परमाराध्य पितृदेव, सभी के परमप्रिय परमपूज्यपाद श्रीश्रीदादा के अवर्त्तमान में उनके ही सुयोग्य ज्येष्ठात्मज परमपूज्यपाद श्रीश्रीअर्कद्युति चक्रवर्त्ती, मेरे बड़े भैया, वे तँत्स्थलाभिषिक्त होकर अब इष्ट के चेतन-प्रतीक, इष्ट के जीवन्त, सचल अभिव्यक्ति आचार्यदेव के रूप में हमलोगों के सम्मुख हैं। उनको लेकर ही हमलोगों को चलना है। वे एकाधार में प्रियपरम दयाल ठाकुर को अपने आचरण में प्रस्फुटित कर एवं निज पितृ-परम्परा को जीवन्त रखकर हम सभी के अग्रवर्त्ती होकर, अग्नि-रूप में–अग्नि का अर्थ है जो सभी को अग्रगामी करते हैं, आचार्य-रूप में हमलोगों का पथ प्रदर्शन करेंगे। उनके द्वारा परिचालित होकर ही हमलोगों को परमदयाल के ईप्सित पथ पर निष्ठा, आनुगत्य एवं कृति-सम्वेग सहित चलना होगा। यही है हमलोगों का जीवन, यही है जीवनवर्द्धन का उपाय, यही है जीवन को पूर्ण करने का उपाय, सार्थक करने का उपाय–यही है मानवता को बचाये रखने का उपाय। हम सभी को बहु-बहु में उद्भिन्न होना पड़ेगा, इस भाव को परिव्याप्त कर देना होगा। आचार्यदेव को सम्मुख रखकर, उनके ईप्सित रूप में परमदयाल की इच्छा को हमें वास्तवायित करना है–यही है हमसभी का शपथ, यही है हमलोगों का संकल्प, यही है हमारी प्रतिज्ञा। हमलोगों का खोने के लिए कुछ नहीं है। हमलोगों का जो प्राप्य है उसे नियति ने पहले से, बहुत पूर्व ही निर्धारित कर दिया है–हमने इसी जीवन में दयाल को पाया है! वे पूर्ण हैं! जो कुछ भी है सब उनमें ही है, उनके बाहर कुछ नहीं है। इसी कारण खो जाने का भय, अभिभूति, दु:ख या ग्लानि हमलोगों को कभी भी ग्रास नहीं करती।

अब मैं कुछ काम की बातें कहता हूँ, आपलोग इनको जान लें। सभी अच्छी तरह से इन बातों को समझें जिससे कि आपके जीवन में, परिवार में, पारिपार्श्विक में, प्रतिष्ठानिकरूप से सभी जगहों में, सभी के जीवन में अच्छी तरह से इनका परिपालन हो–इन बातों को आपलोग मूर्त्त करें।

दीक्षादाता कर्मियों के उद्देश्य से कह रहा हूँ, इष्ट के चेतन प्रतीक हैं आचार्यदेव। इसीलिये वर्त्तमान जो आचार्यदेव हैं, उनकी प्रतिकृति को सम्मुख रखे बिना दीक्षादान नहीं करें। जो वर्तमान हैं उनमें ही विगत जो वे विद्यमान हैं। हम सभी के इष्ट, आराध्य, ध्येय, पूज्य सबकुछ ही दयाल ठाकुर हैं। दयाल ठाकुर की शरणागति के लिए, दयाल ठाकुर को ग्रहण करने के लिए, दयाल ठाकुर को अपने इष्ट के रूप में पाने के लिए दीक्षादाता कर्मीगण के माध्यम से जो दीक्षादान होता है उस समय इष्ट एवं इष्ट के चेतन प्रतीक–इन दोनों प्रतिकृतियों को यथायोग्य मर्यादा के साथ रखना चाहिए। इष्ट के चेतन प्रतीक के माध्यम से ही इष्ट के साथ युक्त होना है। और इष्ट के चेतन प्रतीक हैं आचार्यदेव। अत: आचार्यदेव की प्रतिकृति अर्थात् फोटो, दीक्षा के आसन में जो फोटो रखा जाता है–दीक्षा के समय कर्मीगण ठाकुर का जो फोटो रखते हैं, आचार्यदेव का फोटो रखते हैं, चक्रफोटो रखते हैं, अब से

आचार्यदेव का फोटो अर्थात् वर्तमान आचार्यदेव का फोटो रखें। परमाराध्य पितृदेव का फोटो दीक्षा के समय रखने का अब से कोई प्रयोजन नहीं है। वर्तमान आचार्यदेव का फोटो रखना होगा। यही है विधि, यही है नियम।

और, विभिन्न स्थानों में ठाकुर का आसन या ठाकुर का फोटो हमलोग रखते हैं। ठाकुर के आसन में जो रहता है सबकुछ ही सम्पूर्ण ठाकुर की भाववाही एकक प्रतिकृति है। उसका भी एक अर्थ है, उद्देश्य है। वहाँ पर मगर मनचाहे तरीके से, जैसे-तैसे भाव से करने पर, विशेष रूप से समष्टिगत रूप में जब हमलोग उनको लेकर चलते हैं, उस समय किन्तु अपने मनमुताबिक चलने पर वह किन्तु व्यत्यय को बुलाकर लाता है। मनमुताबिक चलने का अधिकार हमलोगों का नहीं है। अपने मनगढ़ंत रूप से साधन-भजन करना, फिर उस कर्म में दूसरे को सम्मिलित करने का, उद्बुद्ध करने का कोई अधिकार हमलोगो को नहीं है। जो ऐसा करते हैं, जो मनुष्य को विभ्रान्त करते हैं अपने मनगढ़ंत रूप से चलने के लिए, उनलोगों के विभ्रान्ति के मायाजाल में कोई फंस नहीं जाएँ। प्रत्येक कर्म के पीछे एक तात्पर्य रहता है। उस तात्पर्य के अनुसार ही चलना चाहिए, उस भाव के अनुसार ही चलना चाहिए। भाव का स्खलन होने पर प्राप्ति का भंडार शून्य ही रह जाता है। कुछ भी नहीं मिलता। क्योंकि कोई भाव ही तो नहीं है, भावविहीन होकर चलने पर कुछ भी नहीं होता। अब से ठाकुर का जो आसन है, वहाँ पर वर्तमान आचार्यदेव की प्रतिकृति को स्थापित करना होगा। ठाकुर, बड़माँ, बड़दा–ये तीनों प्रतिकृति जैसे स्थिर हैं वैसा ही रहेगा एवं परमाराध्य पितृदेव की प्रतिकृति, अर्थात् परमपूज्यपाद श्रीश्रीदादा की प्रतिकृति के बदले वहाँ वर्तमान आचार्यदेव की प्रतिकृति को स्थापित करना ही विधेय है। इस तरह से आपलोग केन्द्र-मंदिरों में एवं अन्यान्य स्थानों में, अपने घरों में ठाकुर को जहाँ स्थापित करते हैं, ऐसे ही रखें। और परमाराध्य पितृदेव की प्रतिकृति यदि रखना चाहते हैं तो अलग से यथायोग्य स्थान का निर्वाचन करके, सुन्दर रूप से दिवार पर टांगकर मर्यादा सहित रख सकते हैं, उनको स्मरण कर सकते हैं, श्रद्धा-प्रणाम ज्ञापन कर सकते हैं। परन्तु ठाकुर की प्रतिकृति, आसन है जहाँ, वहाँ ठाकुर, बड़माँ, बड़दा एवं वर्तमान आचार्यदेव–इस तरह से ही रखें। पितृदेव की प्रतिकृति, जो आचार्यदेव के आसन पर था उसे दिवार पर सुन्दर ढंग से मर्यादा सहित टांग कर रख सकते हैं। विभिन्न केन्द्र-मंदिर में आचार्यदेव के निर्दिष्ट कक्ष या नाटमण्डप में जो बिछावन बिछा हुआ है, या प्रतिकृति रखी हुई है, उस चौकी, शय्या आदि को हटाकर यत्नपूर्वक समेटकर रख दें एवं वहाँ वर्तमान आचार्यदव की प्रतिकृति को स्थापित करके परमाराध्य पितृदेव की प्रतिकृति को वहाँ सुन्दर रूप से दिवार पर यथायोग्य मर्यादा सहित स्थापित कर सकते हैं। परन्तु हमलोगों के उपासना-स्थलों में, प्रार्थना के स्थलों में, पूजा के स्थान में श्रीश्रीठाकुर, श्रीश्रीबड़माँ, श्रीश्रीबड़दा एवं वर्तमान आचार्यदेव–इस तरह से ही सभी रखें एवं चलें। हमलोग जो विभिन्न केन्द्रों-मंदिरों में प्रार्थना के बाद प्रदीप लेकर प्रणाम करते हैं, पहले श्रीश्रीठाकुर-प्रणाम करते है, उसके बाद श्रीश्रीबड़माँ को प्रणाम करते हैं, उसके बाद बड़दा को प्रणाम करते हैं, उसके बाद आचार्यदेव को प्रणाम करते हैं। इन चार रूप से ही प्रणाम करें। वर्तमान आचार्यदेव को प्रणाम करने पर ही उनके माध्यम से पूर्ववर्ती आचार्यदेव के प्रति श्रद्धा-प्रणाम भी ज्ञापित होता है। वर्तमान में ही पूर्ववर्ती रहते हैं। "पूर्ववर्ती को अधिकार करके ही परवर्ती का आविर्भाव होता है"–ठाकुर ने कहा है। और हमलोग जो विभिन्न अनुष्ठान, सत्संग, उत्सव आदि में जयध्वनि देते है, ठाकुर की जयध्वनि, बड़माँ की जयध्वनि, बड़दा की जयध्वनि, आचार्यदेव की जयध्वनि, सत्संग की जयध्वनि; हमलोग अबतक कहते थे–"परमप्रेममय श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रजी की जय, परमाराध्या जगज्जननी श्रीश्रीबड़माँ की जय, परमपूज्यपाद श्रीश्रीबड़दा की जय, परमपूज्यपाद आचार्यदेव श्रीश्रीदादा की जय, सत्संग की जय"; अब से हमलोग परमपूज्यपाद आचार्यदेव श्रीश्रीदादा की जय के स्थान पर स्थायी रूप से बोलेंगे–"परमपूज्यपाद श्रीश्रीआचार्यदेव की जय।" 'श्रीश्रीदादा'

कहने का कोई प्रयोजन नहीं है। आचार्यदेव की जय कहने से ही पूर्ववर्ती आचार्यदेव एवं वर्तमान आचार्यदेव सहित ठाकुर-वाही जो आचार्य-परम्परा है, उसी परम्परा का जयध्वनि समझा जायेगा। उसमें ही पूर्ववर्ती, वर्तमान एवं परवर्ती–समग्र रूप से परिव्याप्त है, उसमें ही अन्तर्गत है। इसलिए अब से हमलोग स्थायी रूप से–"परमप्रेममय श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रजी की जय, परमाराध्या जगज्जननी श्रीश्रीबड़माँ की जय, परमपूज्यपाद श्रीश्रीबड़दा की जय, परमपूज्यपाद श्रीश्रीआचार्यदेव की जय, सत्संग की जय"–इस तरह से कहने में अभ्यस्त होंगे।

और एक बात है, वर्तमान जो आचार्यदेव हैं, अब तक बातचीत के क्रम में हमलोग उनके संबंध में कहते समय सहज रूप से उनके नाम से ही पुकारते थे। 'बाबाईदा, बाबाईदादा, पूजनीय बाबाईदा, पूज्यपाद बाबाईदादा'–इस तरह से कहते थे। अब से ऐसे संबोधन में भी थोड़ा परिवर्तन करने की जरूरत है। हमलोगों का आर्य-भारतीय संस्कार है–जो गुरू हैं, गुरू-स्थानीय हैं, जो आचार्य हैं, इस तरह से उनका नाम लेकर बुलाना शोभनीय नहीं है। केवल 'आचार्यदेव' कहकर संबोधन कर सकते हैं, जो-लोग केवल दादा कहकर संबोधन करते हैं, जब उनके साथ बातचीत करते समय 'दादा' कहकर संबोधन कर सकते हैं, परन्तु नाम के साथ दादा कहकर संबोधन करना शोभनीय नहीं है। यही हमलोगों की आर्य-भारतीय परम्परा है, यही आर्य-भारतीय संस्कार है। इनकी रक्षा करनी चाहिए, इनका पालन करना चाहिए, अनुसरण करना चाहिए। हमलोग जब उनके संबंध में बातचीत करेंगे, केवल 'आचार्यदेव'–इसरूप से बोलेंगे, तभी समझा जायेगा कि यह उनके संबंध में कहा जा रहा है। और, हाल तक तो 'श्रीश्रीदादा' कहने का मतलब लोग परमाराध्य पितृदेव को ही समझते थे, उससे एक विभ्रान्ति पैदा हो सकती है। इसलिए सिर्फ 'आचार्यदेव' कहना ही अच्छा है। जो लोग उनके नजदीक रहते हैं, सहज भाव से दादा कहकर ही संबोधन करते हैं, वह ठीक है, परन्तु जब उनके प्रसंग में चर्चा होगी तब 'आचार्यदेव'–इस तरह से संबोधन करना अच्छा है, यही विधेय है। इसका अनुसरण करें।

एक और बात, श्रीश्रीठाकुर एवं श्रीश्रीबड़माँ लेकिन अभेद हैं। ठाकुर ने स्वंय कहा है–श्रीश्रीबड़माँ हैं उनका ही नारी-रूप, उनका समविपरित सत्ता। इसलिए बड़माँ की प्रतिकृति रखें या न रखें, वे सर्वदा ठाकुर के साथ ही हैं। श्रीश्रीबड़माँ का स्थान किन्तु ठाकुर के साथ एक लेवल पर ही है। श्रीश्रीबड़दा का आसन या आचार्यदेव का आसन उससे थोड़ा नीचे लेवल में रहना चाहिए–यही विधेय है। एक लेवल में या एक ही जगह में रखकर उपासना नहीं करना चाहिए–एक ही आसन में रखकर, एक ही बिछावन में रखकर। एक ही आसन बनाया, वहाँ पर ही तीन-चार फोटो रख दिया–इस तरह से नहीं करना चाहिए। इससे भाव का स्खलन होता है। अनेक समय रास्ते में देखा जाता है, या विभिन्न घरों में देखा जाता है, दुकानों में भी बिक्री होती है, एक ही फोटो फ्रेम में ठाकुर का चेहरा, ठाकुर के बगल से बड़माँ का चेहरा निकला हुआ है, एक तरफ से बड़दा का चेहरा निकला है, पेट के बीच से श्रीश्रीदादा का चेहरा निकला है, एक तरफ से वर्तमान आचार्यदेव का चेहरा निकला है। लोग सोचते होंगे–" वाः, कैसे एक ही फोटो में, एक ही स्थान में सभी को पा गया"! इससे लेकिन भाव का स्खलन होता है। इस तरह से करना ठीक नहीं है। हमलोगों के ध्येय, इष्ट, आराध्य–सबकुछ ठाकुर हैं। हमलोगों के ध्यान को ठाकुर में केन्द्रायित करना ही हमलोगों की साधना है। ठाकुर के साथ सभी को एकाकार करना लेकिन विधेय नहीं है। यहाँ तक कि ठाकुर के जो चेतन प्रतीक है, वे उनके प्रतीक हैं; इस प्रतीक के साथ जितना सूक्ष्म अन्तर रखना है उतना अन्तर होना ही चाहिए, यही विधेय है। इन बातों का अनुसरण करना चाहिए। ऐसे भाव को यदि हमलोग धारण किये नहीं रहते हैं तब हमलोगों के अन्तर का भाव परिपुष्ट नहीं होता। तब हमलोग जो बनने के लिए साधना कर

रहे हैं, वैसा बनने से वंचित रह जायेंगे। मन के घानी में, एक ही स्थान पर चक्की की तरह चक्कर खाते रहेंगे, वृद्धि नहीं होगा। जीवन-वर्द्धन के लिए ही तो हमलोग सबकुछ करते हैं। इसलिए इनका अनुसरण करना चाहिए; और, श्रीश्रीठाकुर के पट पर इसके अलावा अन्य कोई प्रतिकृति रखना भी ठीक नहीं है। हमलोगों के अनेक पूजनीय रह सकते हैं, जिन्हें हमलोग पूज्य मानते हैं, प्यार करते हैं, जिनसे प्रेम करते हैं, उस प्रेम के चलते उनकी प्रतिकृति को यदि हमलोग रखना चाहते हैं, पृथक रूप से रख सकते हैं। ठाकुर के आसन लेकिन ठाकुर, बड़माँ, बड़दा और वर्तमान आचार्यदेव–इन्हें लेकर ही, इसरूप से ही रखना चाहिए। इससे बाहर जाना विधिसम्मत नहीं है। हमलोग जो ठाकुर को लेकर चलते हैं, एक आदेश में, एक आदर्श में, एक विधि, एक अनुशासन से अनुप्राणित होकर यदि नहीं चलते हैं, उसे यदि परिपालन नहीं करते हैं, तब ठाकुर ने जिस तरह से हमलोगों को बनने को कहा है, वैसा बनने से क्या हमलोग वंचित नहीं रह जायेंगे? इसीलिए सभीलोग इन बातों का इसी तरह से ही अनुसरण करें।

इस समय, इस परिवर्तन के समय मन में एक अद्भुत प्रक्रिया कार्य करती है, इसलिए सभी का मन विक्षिप्त रहता है। अभी प्रत्येक लोगों के मन को संहत करना जरूरी है। आचार्यदेव जिस तरह से कहते हैं, उनकी इच्छा, उनकी अभीप्सा, उनका अभिप्राय–उसे समझना है, समझकर उसके अनुसार कार्य में लग जाना है; उन्होंने कुछ ही दिन पहले सत्संग में सभी को सावधानी पूर्वक रहने की बात कही, संभवतः आप सभी ने सुना होगा। अभी भी इस संक्रमण की आशंका समाप्त नहीं हुई है, और एक लहर आने की संभावना भी है। स्वयं को एवं अपने पारिपार्श्विक, परिवार, परिवेश सभी को बचाना है–यही हमलोगों का कर्तव्य है। सावधानी पूर्वक रहें, इष्टमुखी होकर चलें, तन्मय रहें, नित्ययाजी बनें। और, सबसे पहले आवश्यक है नित्य यजनशील होने की। नाम-ध्यान, इष्टभृति, स्वस्त्ययनी की विधियों का यथायथ परिपालन की प्रचेष्टा, परमदयाल के अमिय वाणी को पाठ करना, उन सबका अनुधावन करके परिपालन करने की प्रचेष्टा, आत्मविश्लेषण–ये सब सभी के लिए अत्यन्त आवश्यक है। तब आचार्यदेव-ईप्सित जो कुछ है उसे हमलोग स्वयं पालन कर पाएँगे, और हमलोगों के चलन से उदबुद्ध होकर उसके उदाहरण से शत-शत, हजारों-हजार मनुष्य उदबुद्ध होंगे। इस साधना में चलने के लिए हमलोगों को अंगीकार करना ही पड़ेगा। तभी हमलोग सीना तानकर कह सकेंगे–"हाँ, मैं तुम्हारा ही हूँ, मैं तुम्हारा ही हूँ, मैं तुम्हारा ही हूँ! मेरे जीवन में केवल तुम जययुक्त हो, मैं तुमको ही सबसमय जयी करता हूँ मेरे जीवन में। मुझमें कोई दुर्बलता नहीं है।" जिस तरह से परमाराध्या पितृदेव–वे अपने समग्र जीवन से, समग्र सत्ता सहित, समग्र चेतना सहित, सिर्फ उनकी ही प्रतिष्ठा किए हैं, 'उनका' ही परिवेशन किए हैं–सभी में। कभी भी किसी को दुःख नहीं पहुँचाए हैं, कष्ट नहीं दिए हैं, सिर्फ अकातर भाव से देते गये हैं। समग्र सत्ता से, समग्र जीवन देकर, समग्र चेतना से, समग्र कर्म से, सिर्फ 'उनकी' ही प्रतिष्ठा किए हैं। और कर दिखलाकर समझा गए हैं कि–यह किया जा सकता है। और यही है एकमात्र अच्छा रहने का उपाय, चिरजीवी होने का उपाय है। यह शरीर नहीं रहता है–देह नश्वर है। देहविहीन होकर भी अनन्तकाल जीवित रहा जा सकता है। जैसे, अनन्त काल तक जीवित रहेंगे परमाराध्य पितृदेव।

आपलोग सभी परमदयाल का अमिय आशिष लाभ करें, अपने जीवन में उनके आशीर्वाद से स्नात हों। आचार्यदेव के इच्छानुरूप चलन में अभ्यस्त हों, तभी जीवन सार्थक होगा। हमलोगों का ठाकुर-ग्रहण करना सफल होगा, हमलोगों का जीवन पूर्णता के पथ पर आगे बढ़ता जायेगा, सार्थकता के पथ पर आगे बढ़ता जायेगा । जयगुरू!

वन्दे पुरूषोत्तमम्! वन्दे पुरूषोत्तमम्! वन्दे पुरूषोत्तमम्!!!